ISSN: 2278-4632
Vol-14, Issue-12, No.05, December: 2024

मौर्यकालीन एवं गुप्तकालीन सामाजिक स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन

हुकमचंद चौधरी (शोधार्थी) श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़
डॉ. मनीष कुमार सिंह (शोध निर्देशक) श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़

प्राचीन भारतीय समाज चार वर्णों में बँटा हुआ था इनके सामाजिकआचार–विचार, रहन–सहन और व्यवहार भी एक–दूसरे से पृथक् थे।कालान्तर में इसी सामाजिक विभाजन के कारण अनेक सामाजिक संस्थाएँबनीं जो मनुष्य के सामाजिक जीवन को उद्घाटित करने में प्रेरक तत्वबनीं। धीरे–धीरे समाज के विविध पक्षों से सम्बन्धित सामाजिक व्यवस्थाओंका गठन हुआ। इन व्यवस्थाओं ने समाज को पूर्णता प्रदान की औरविकास की ओर अग्रसर किया। समाज को पूर्णता प्रदान करने वाली इन्हींव्यवस्थाओं में वर्ण–व्यवस्था भी थी। इस व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्येकव्यक्ति को अपने स्वाभाविक गुणों के अनुरूप स्थान मिलता था। भारतीयसामाजिक जीवन में वर्ण–व्यवस्था का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है जोएक सामाजिक विभाजन के रूप में वैदिक काल से चली आ रही है।

मौर्यकाल में वर्ण–व्यवस्था को एक निश्चित आधार प्राप्त हो चुकाथा। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में समाज को चार वर्णों में विभक्त किया हैयथा– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। वर्ण कठोर होकर जाति के रूप मेंपरिवर्तित होकर जटिल हो गये जिसका आधार जन्म था। विशाल मौर्यसाम्राज्य के लिए अत्यधिक संसाधन अपेक्षित थे अतः कौटिल्य नेउत्पादनपरक जाति व्यवस्था की सिफारिश की। वर्ण–व्यवस्था की रक्षाकरना राजा का कर्त्तव्य था। वर्ण–व्यवस्था के भंग होने से सम्पूर्णसामाजिक व्यवस्था नष्ट हो जाती, जिसका प्रभाव राज्य के अस्तित्व पर भीपड़ता है। इसीलिए वर्णाश्रम धर्म की स्थापना के लिए राजा को निर्देशितकिया गया। चारों वर्णों के व्यवसाय निर्धारित थे, जिनका पालन करनाउनके लिए आवश्यक था।

मौर्यकाल में ब्राह्मण को समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। यह वर्गकवि, पुरोहित एवं शिक्षा व्यवस्था में संलग्न था। प्रधानतः उसके छह कर्मथे– वेद पढ़ना, वेद पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना और दानलेना। मौर्यकाल में ब्राह्मणों की श्रेष्ठता पर प्रहार हो रहा था तथा बौद्धएवं जैन अनुयायियों की संख्या में वृद्धि हो रही थी। अशोक ने सर्वत्रब्राह्मणों को समुचित आदर देने की बात कही है जो ब्राह्मणों के प्रति हुईउपेक्षा को ही दिखाता है।

पुरोहित के रूप में ब्राह्मण को शीर्ष स्थान प्राप्त था, किन्तु वहीब्राह्मण पुरोहित हो सकता था जिसकी पत्नी शूद्र वर्ण की न हो, क्योंकिकौटिल्य का विचार है कि शूद्रपति पुरोहित से यज्ञ का महत्त्व कम होजाता है। ब्राह्मण चारों वर्ण की पत्नियाँ रख सकता था। ब्राह्मण को मन्त्रीपद देने का भी कौटिल्य समर्थन करते हैं। कौटिल्य ने ऋत्विक आचार्यएवं पुरोहित तथा श्रोतिय ब्राह्मण को कर से मुक्त रखा है। यह ब्राह्मणों केमहत्व का परिचायक है। मेगस्थनीज ने ब्राह्मणों (पुरोहितों) को दार्शनिककहकर सम्बोधित किया है। उसने विवरण दिया है कि इन दार्शनिकों कीसंख्या यद्यपि कम थी फिर भी वे समाज में सबसे शीर्ष पर थे।

क्षत्रिय वर्ण को शासक, सैन्यकार्य एवं युद्ध सम्बन्धी दायित्व कानिर्वहन करना होता था। भारतीय समाज में क्षत्रियों की स्थिति ब्राह्मणों केबाद थी किन्तु उनका मान और महत्व ब्राह्मणों से कम नहीं था। देश औरसमाज की रक्षा–व्यवस्था का भार क्षत्रियों पर ही था। धर्मसूत्रों मेंसिद्धान्ततः क्षत्रिय के ही राजा होने का विचार मिलता है। क्षत्रिय–कर्तव्यमें अध्ययन, यजन, दान, शस्त्रजीविका तथा भूत–रक्षण बताया गया। जोपूर्ववर्ती विचारकों के ही समान था। मेगस्थनीज के अनुसार भारतीय समाजसात वर्गों में विभक्त था। इनमें पाँचवा स्थान क्षत्रियों का है जिसका वर्णनसैनिक के रूप में किया गया है।

समाज में वैश्यों का स्थान क्रमानुसार तीसरा था। व्यापारिक व्यवस्थाऔर कृषि का समस्त भार उसके ऊपर निर्भर करता था। राज्य और देशकी आर्थिक स्थिति उसी के सत्प्रयास से सुदृढ़ होती थी। अर्थ सम्बन्धीसारी नीतियों का संचालन वैश्य वर्ग करता था। कौटिल्य ने अध्ययन,यजन, दान, कृषि, पशुपालन और वाणिज्य वैश्यों का कर्म बताया है। वैश्यद्वारा किसी वर्ण की निन्दा करने पर उसे शूद्रों से कम तथा क्षत्रियों सेअधिक दण्ड देने का प्रावधान मौर्यकाल में किया गया था। कौटिल्य केअर्थशास्त्र में विवरण है कि वैश्यों की सेना ब्राह्मणों की सेना से उत्तममानी जाती थी क्योंकि समाज में इनकी संख्या अधिक होती थी। कौटिल्यका यह भी मत है कि कृषकों तथा पशुपालकों की सहायता गुप्तचरों केकार्यों में भी प्राप्त करनी चाहिए। वैश्य वर्ण देश के निमित्त अर्थोपार्जन केलिए उत्तरदायी माना जाता था। वह 'वणिक', 'श्रेष्ठी' और सार्थवाह भीकहा जाता था।

Copyright @ 2024 Author

पूर्ववर्ती विचारकों की भाँति कौटिल्य ने भी अर्थशास्त्र में शूद्रों काप्रमुख कर्तव्य द्विजातियों की सेवा करना बताया है तथा इसके साथ ही वेकृषि, वाणिज्य, पशुपालन, शिल्पकारी, गायन एवं वादन का कार्य भी करतेथे। सेवा के अतिरिक्त कर्म स्वतन्त्र थे जिनके करने पर सेवा करनाआवश्यक नहीं था। कौटिल्य ने शूद्रों के एक वर्ग पशु–पालक का भीउल्लेख किया है। राज्य के संचालन में शूद्रों को भी स्थान दिया जाता थाजैसे गुप्तचर और सेना के कार्यों में। किन्तु प्रशासकीय पदों पर शूद्रों कोनियुक्त नहीं किया जाता होगा क्योंकि अर्थशास्त्र में अमात्यों को कुलीनहोना आवश्यक बताया गया है।

मौर्यकाल में शूद्रों की स्थिति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन मिलते हैं। पूर्वकालों की अपेक्षा शूद्र केवल सेवक न होकर कृषि एवं शिल्प कार्यों कोअपनाकर राज्य के उत्पादन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने लगे। नई स्थापितबस्तियों में शूद्रों को पहली बार जमीन दी गयी। इस समय अनेक जातियोंका विकास हो चुका था, जिनका आधार कोई विशेष शिल्प या पेशा था।तन्तुवाय (जुलाहे), रजक (धोबी), तुन्नवाय (दर्जी), सुवर्णकार (सुनार),चर्मकार (चमार), लौहकार (लुहार), कुदटांक (बढ़ई) आदि इसी प्रकार कीजातियाँ थीं। इन सबका समावेश शूद्र वर्ण में किया जाता था और इन्हेआर्यशूद्र की संज्ञा दी गयी। जातियों के प्रगुणन में 15 मिश्रित जातियों का भी उल्लेख हुआ है। इन जातियों में अम्बष्ठ, निषाद, पारशव, रथकार,वैदेहक, सूत, चाण्डाल, श्वपाक आदि प्रमुख हैं। चाण्डाल और श्वपाकों कोअस्पृश्य माना जाता था।

गुप्तकालीन समाज भी परम्परागत रूप से चार वर्णों में विभक्त था–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। किन्तु परम्परागत वर्ण–व्यवस्था में बहुतपरिवर्तन आ चुका था। इस समय तक अधिक संख्या में विदेशियों काभारतीय समाज में विलय हुआ तथा कई अन्य जनजातियाँ जातियों मेंबदल गयीं। इन कारणों से जातियों की संख्या में वृद्धि होना स्वाभाविकथा। गुप्तकालीन स्मृतियों में समाज के कठोर रूप का चित्रण मिलता है।इसी प्रकार कालिदास की रचनाओं में भी वर्ण–व्यवस्था का चित्रण हुआ हैकिन्तु व्यवहार में वर्ण–व्यवस्था का कठोर रूप प्रकट नहीं होता, उसकीकठोरता गुप्तकाल में टूटने लगी थी।

गुप्तकालीन समाज में ब्राह्मणों का स्थान सबसे ऊपर था। उनकेप्रमुख कर्त्तव्य अध्ययन–अध्यापन, यज्ञ करना और कराना, दान देना औरग्रहण करना माने जाते थे। क्षत्रिय का प्रमुख कर्त्तव्य रक्षा करना होता था।वैश्य का कार्य व्यापार–वाणिज्य था तथा शूद्रों का प्रमुख कार्य सेवा करनाथा। गुप्तकाल में जातियों के विषय में व्यवसाय–बन्धन पहले की अपेक्षाकुछ शिथिल हो गया था। प्रायः सभी वर्णों के लोग अपने कार्य केअतिरिक्त अन्य वर्णों के कार्यों को अपना सकते थे।

पूर्ववर्ती कालों की भाँति गुप्तकाल के सामाजिक जीवन में ब्राह्मणोंकी सर्वोच्चता थी। उन्हें सभी प्रकार के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक,धार्मिक एवं शैक्षणिक अधिकार प्राप्त थे।

नारद का कहना है कि विपत्तिकाल में ब्राह्मण भी क्षत्रिय या वैश्यका व्यवसाय अपना सकता था। कुछ ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जहाँ नकेवल आपत्तिकाल में अपितु आर्थिक रूप से अधिकाधिक लाभ कमाने केलिए भी अन्य व्यवसाय करने वाले ब्राह्मणों का उल्लेख मिलता है। जैसेमृच्छकटिकम् नाटक का पात्र चारुदत्त नामक ब्राह्मण एक सम्पन्न व्यापारीथा। इसी प्रकार नारद स्मृति में ब्राह्मण श्रीधर द्वारा देवधर नाम के ब्राह्मणको दस हजार दीनार ब्याज पर देने का विवरण मिलता है।

स्कन्दगुप्त के इन्दौर लेख से पता चलता है कि क्षत्रिय जाति केलोग भी वैश्य का कार्य करते थे। अभिलेख में अचलपुर के अचलवर्मा तथाभ्रुकंठ सिंह नामक क्षत्रिय व्यापारियों का उल्लेख मिलता है। इन्दौर लेखसे पता चलता है कि तेलियों की एक श्रेणी का मुखिया क्षत्रिय था।गुप्तकाल में वर्णेत्तर कर्म केवल आपत्तिकाल में ही नहीं रह गया बल्कि अबवह सामान्य कर्म हो गया था।

गुप्तकाल में वैश्यों का प्रमुख कार्य कृषि एवं व्यापार–वाणिज्य था।इस काल में वैश्य को वणिक, श्रेष्ठि और सार्थवाह कहा गया है।मृच्छकटिकम् नाटक में उज्जयिनी के धनाढ्य वैश्य व्यापारियों एवं श्रोणियोंका उल्लेख मिलता है। ब्राह्मण और क्षत्रिय की भाँति इस काल में वैश्यको भी आपत्तिकाल में दूसरे वर्ण का कार्य करने का विधान किया गयाथा। यह भी कहा गया है कि ब्राह्मण, गौ और वर्ण की रक्षा के लिए शस्त्रधारण कर सकता था। गुप्तकालीन साहित्य से पता चलता है कि इसकाल में वैश्य कृषक का भी कार्य करने लगे थे। कृषि तथा अन्य कार्यों मेंलगे सामान्य स्थिति वाले वैश्यों की सामाजिक स्थिति शूद्रों के समान होगयी थी। विष्णुपुराण में वैश्य–शूद्रों का भी उल्लेख मिलता है। इस प्रकारहम देखते हैं कि वैश्य वर्ग धनाढ्य जरूर था किन्तु गुप्तकाल में उनकीसामाजिक स्थिति में पहले की अपेक्षा गिरावट देखने को मिलती है।

 Copyright @ 2024 Author

समाज का सबसे निम्न वर्ण शूद्र था। इनका प्रमुख कार्य ब्राह्मण,क्षत्रिय और वैश्य की सेवा करना था किन्तु गुप्तकाल में कुछ परिवर्तनदेखने को मिलता है कि जो परम्परा पहले से चली आ रही थी अब वहटूटने लगी थी।इस काल में शिल्पकर्म शूद्र के सामान्य कर्म में शामिल होगया था। इस काल में सेवाकार्य द्वारा जीवनयापन करने वाले शूद्रों कीसंख्या काफी कम हो गयी थी और अब ये बड़ी संख्या में कृषि, विभिन्नशिल्पों तथा व्यापार आदि में लग गये थे। शूद्र बड़े पैमाने पर मजदूर केरूप में कृषि कार्य में लग गये थे। बड़ी संख्या में शूद्रों के कृषि कर्म करनेके कारण कात्यायन ने उन्हें कृषकों की श्रेणी में रखा है। फाहियान ने भीशूद्र कृषकों को शूद्रा ं की मध्यम श्रेणी में रखा ह। परन्तु कृषि कार्य में लगेशूद्रों की स्थिति धीरे–धीरे बंधुआ मजदूरों जैसी होने लगी थी और सामन्तशासक, उच्च अधिकारी तथा दानग्राही ब्राह्मण मनमाने ढंग से उनकाशोषण करने लगे थे।

कार्यों एवं व्यवसायों के अतिरिक्त शूद्रों की स्थिति में जोउल्लेखनीय परिवर्तन हुए, उनमें एक है उनकी उपजातियों में वृद्धि।अमरकोश में तीस शूद्र जातियों का उल्लेख मिलता है। जिनमें शांखिक,वीणावादक, भारवाहक, तामकुट्टक, रजक, पलगण्ड, तन्तुवाय जैसी पृथक्शूद्र जातियों का अभ्युदय सम्पन्न एवं सुदृढ़ आर्थिक जीवन में श्रम औरशिल्पों के विशिष्टीकरण का द्योतक है। गुप्तकाल में वर्णसंकर जातियों मेंभी वृद्धि हो गयी थी। यह जातीय वर्णसंकरता अर्न्तवर्णी या असवर्ण विवाहसे हुई थी। विभिन्न वर्णसंकर जातियों के आपस में सम्मिश्रण होने सेअनेक संतानें उत्पन्न हुईं जिनको निम्न जातियों के अन्तर्गत ग्रहण करलिया गया। इस प्रकार इस समय तक जातियों और उपजातियों का एकविशाल समुदाय बन गया था। गुप्तकालीन समाज में अम्बष्ठ, आयोगवाह,उग्र, निषाद, मागध, वैदेहक, धीवर, चाण्डाल, कैवर्त, म्लेच्छ, किरात, भिल्ल,पुलिन्द, डोम आदि वर्णसंकर जातियों का उल्लेख मिलता है।

मौर्यकाल में स्त्री आर्थिक दृष्टि से पूरी तरह पुरुष पर निर्भर होचुकी थी। किन्तु कुछ अर्द्धसीमित जातियों के विषय में कौटिल्य ने उल्लेखकिया है कि ये स्त्रियाँ जीविकोपार्जन में अपने पुरुषों का हाथ बंटाती थीं।कौटुम्बिक अथवा कबीला अर्थ–व्यवस्था में स्त्री आर्थिक दृष्टि से पुरुषों केसमान आत्मनिर्भर थी। लेकिन सामन्ती अर्थ–व्यवस्था का विकासहोते–होते और सामाजिक श्रम का विभाजन होने पर स्त्री घर की बन्दिनीहोती गई जिसकी प्रशंसा में स्त्री गृहस्वामिनी कहलाने लगी, जिसकावास्तविक अर्थ था– गृहदासी। विवाह उसके लिए जीविका का साधन थाऔर धीरे–धीरे वह सभी क्षेत्रों से सिमटकर घर में बन्द हो गयी।

मौर्यकाल में स्त्रियों को पुनर्विवाह एवं नियोग की अनुमति थी,लेकिन फिर भी मौर्यकाल में ऐसी विधवाओं की सत्ता थी जो पुनर्विवाह नकरके स्वतंत्र रूप से जीवन व्यतीत करती थी। कौटिल्य ने ऐसी स्त्रियोंको 'छन्दवासिनी (स्वतंत्र रूप से रहने वाली) विधवा' कहा है। कौटिल्य केअनुसार स्त्रियों का जीवन केवल विवाह करके सन्तानोत्पत्ति ही नहीं था।अर्थशास्त्र में परिव्राजिकाओं का भी उल्लेख किया गया है, जिन्हें समाज मेंउच्च स्थान प्राप्त था। परिव्राजिकाओं का उपयोग गुप्तचर विभाग में भीहोता था। साधारतः स्त्री अपने गृहों में ही शिक्षा ग्रहण करती थी। स्त्रियाँबौद्ध एवं जैन भिक्षुणी के रूप में देशाटन करते हुए भी विद्यार्जन करतीथीं। हालांकि इस काल में स्त्री शिक्षा का स्तर कम हो गया था। मौर्यकालमें पुत्र की तुलना में पुत्रियों को कम अधिकार ही प्राप्त थे लेकिन यदि पुत्रन हो तो पुत्री ही पिता की सम्पत्ति की अधिकारिणी होती थी। मौर्यकाल मेंऐसी स्त्रियों का उल्लेख मिलता है जो पारिवारिक जीवन व्यतीत नहींकरती थी तथा गणिका अथवा वेश्या का जीवनयापन करते हुए राजा कामनोरंजन करती थी। स्त्रियाँ सैनिकों के रूप में भी कार्य करती थीं।मौर्यकाल में सतीप्रथा का प्रचलन नहीं था।

गुप्तकाल तक आते–आते स्त्रियों की स्थिति और अधिक निम्न औरदयनीय हो गयी थी। उनके ऊपर इस काल में अनेक बन्धन और प्रतिबन्धलगा दिये गये। हालांकि गुप्तकालीन साहित्य और कला में नारी काआदर्शमय चित्रण किया गया है किन्तु व्यावहारिक रूप से देखा जाये तोउनकी स्थिति पहले की अपेक्षा अधिक दयनीय हो गयी थी। कन्याओं काविवाह रजस्वला होने से पहले ही किया जाने लगा था।

गुप्तकाल में स्त्रियों की शैक्षिक स्थिति में भी पतन दिखायी देता है।महिलाओं को प्रायः घर में ही नृत्य, कला, संगीत और चित्रकला आदि कीशिक्षा दी जाती थी। यह शिक्षा उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास तथाअधिकारों के लिए पर्याप्त नहीं थी। इस काल के नाटकों में राजपरिवारोंकी स्त्रियों को छोड़कर अन्य सभी महिला पात्र प्राकृत भाषा बोलते हुएदिखायी गयी है। नारद ने महिलाओं को अनपढ़ों एवं बच्चों की श्रेणी मेंरखा है। गुप्तकाल में स्त्रियों के साम्पत्तिक अधिकारों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तनदेखने को मिलता है। इस काल में न केवल स्त्रीधन के क्षेत्र को औरअधिक व्यापक कर दिया गया था अपितु कुंवारी कन्याओं, बहनों, पत्नी,माता एवं विधवा को दायभाग में हिस्सा दिये जाने के सम्बन्ध मेंन्यायसंगत एवं सहानुभूतिपूर्ण प्रावधान किये गये। इससे उनकी आर्थिकस्थिति में कुछ सुधार अवश्य हुआ होगा।

 Copyright @ 2024 Author

गुप्तकाल में पर्दा प्रथा का स्पष्ट प्रमाण देखने को नहीं मिलता है।कुमारदेवी, प्रभावती गुप्ता इसका प्रमुख उदाहरण है जो कि बिना पर्दे कीराजसभाओं में भाग लेती थीं। यद्यपि शूद्रक का यह कथन है कि विवाहितास्त्रियाँ अवगुंठन करती थीं लेकिन यह पर्दा प्रथा का सूचक नहीं है।अभिज्ञानशाकुन्तलम् के विवरण से भी हमें ज्ञात होता है कि अविवाहितकन्याएँ अनजान अतिथियों के सामने भी पर्दा नहीं करती थीं। इस प्रकारहम कह सकते हैं कि गुप्तकाल में पर्दा प्रथा का अभाव सा था।

जहाँ पूर्ववर्ती धर्मशास्त्रकारों ने नियोग सम्बन्धी विस्तृत विवेचनप्रस्तुत किया है, वहीं गुप्तकाल के धर्मशास्त्रकारों ने नियोग प्रथा कोहतोत्साहित किया। सर्वप्रथम इसी काल में सती प्रथा को भी स्पष्ट समर्थनप्राप्त हुआ, यद्यपि सती होने वाली महिलाओं के उदाहरण बहुत कम मिलतेहैं। सती प्रथा का उद्भव एवं प्रचलन मुख्यतः शासक वर्ग के परिवारों मेंही था। इस काल के साहित्यिक एवं अभिलेखीय प्रमाणों तथा स्मृति ग्रन्थोंये भी विधवा के सती होने का विधान मिलता है। दूसरी तरफ ध्रुवदेवी औरप्रभावती गुप्ता जैसी राजपरिवारों की स्त्रियाँ थीं जो अपने पति की मृत्यु केबादसती नहीं हुई थी। स्पष्ट है कि गुप्तकाल में सती प्रथा का प्रचलनथा किन्तु यह बाध्यकारी न होकर स्वैच्छिक था।

गुप्तकाल में वेश्याओं के अस्तित्व का भी साक्ष्य मिलता है। इस समय गणिकाएँ नागरिक जीवन का सामान्य अंग थीं, क्योंकि इस काल केस्मृतिकार वात्स्यायन तथा नारद ने भी वैश्यागमन को अवैध नहीं ठहराया।इस समय वेश्यावृत्ति को निम्न दृष्टि से नहीं देखा जाता था। मुद्राराक्षस सेपता चलता है कि उत्सवों के समय बड़ी संख्या में वेश्याएँ सड़कों परनिकलती थीं। कालिदास ने उज्जयिनी के महाकाल मन्दिर में नृत्यगानकरने वाली देवदासियों का विवरण दिया है। ये सभी विवरण वेश्याओं केबढ़े महत्त्व के संकेत देते हैं।

मौर्यकालीन साक्ष्यों में केवल कौटिल्य के अर्थशास्त्र में ही संस्कारोंका उल्लेख हुआ है। यद्यपि पूर्व परम्परा के संस्कार समाज में पूर्णवत्प्रचलित थे किन्तु कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मुण्डन, उपनयन, विवाह तथाअन्त्येष्टि संस्कारों का ही वर्णन प्राप्त होता है।

सूत्रों और स्मृतियों में संस्कारों के विषय में विस्तार से वर्णन है।व्यक्ति के जीवन में कितने संस्कार होने चाहिए इस पर धर्मशास्त्रकारों मेंमत भिन्नता देखने को मिलती है। गौतम संस्कारों की संख्या चालीसबताते हैं और वैखानस अट्ठारह। गृह्यसूत्रों के समय से संस्कारों का एकव्यवस्थित क्रम हमारे सामने प्रतिबिम्बित होने लगता है। इनमें संस्कारों कीसंख्या 12 से 18 तक वर्णित है। आश्वलायन गृह्यसूत्र में 12, पारस्कर,बौधायन एवं वाराह गृह्यसूत्र में 13 संस्कारों का उल्लेख मिलता है।मनुस्मृति में 13 संस्कारों का वर्णन है। याज्ञवल्क्य स्मृति में केशान्त कोछोड़कर मनुस्मृति के शेष 12 संस्कारों का वर्णन मिलता है, किन्तु बाद कीस्मृतियों में और प्रायः सभी धर्मशास्त्रकार संस्कारों की संख्या 16 मानते हैं,जो निम्नलिखित हैं–

1	गर्भाधान	2	पुंसवन	3	सीमन्तोन्नयन	4	जातकम
5	नामकरण	6	निष्क्रमण	7	अन्नप्राशन	8	चूड़ाकर्म
9	कर्णवेध	10	विद्यारम्भ	11	उपनयन	12	वेदारम्भ
13	केशान्त	14	समावर्तन	15	विवाह	16	अन्त्येष्टि

प्राचीन भारत के हिन्दू समाज में मनुष्य के जीवन का सर्वांगीणविकास संस्कारों द्वारा ही सम्पन्न होता था। इनका अनुपालन धार्मिक एवंकर्मकाण्ड क्रियाओं के रूप में जन्म से लेकर मरणोपरान्त तक किया जाताथा। मनुष्य के अभीष्ट की प्राप्ति और उसके जीवन की सिद्धि संस्कारों केमाध्यम से मानी गयी है।

प्राचीनकाल में समाज का उत्कर्ष मनुष्य के आर्थिक जीवन कीसम्पन्नता, समुन्नति और सुख–सुविधा पर निर्भर करता रहा है। मनुष्य काभौतिक और लौकिक सुख उसके जीवन के आर्थिक विकास से जुड़ा रहाहै। इसके साथ ही धार्मिक दिशा–निर्देश एवं नियमों के अन्तर्गत भीसामाजिक व्यवस्था का स्तर सदैव प्रभावित रहा है तथा धर्म ने मनुष्य केजीवन को अत्यधिक प्रभावित किया है। यह सही है कि समय–समय परमनुष्य की धार्मिक और आर्थिक गतिविधियाँ उसकी आवश्यकताओं केअनुरूप घटते–बढ़ते रहे और कभी–कभी परिवर्तित भी होते रहे हैं परन्तुआर्थिक जीवन का मूल आधार कृषि, पशुपालन तथा व्यापार–वाणिज्यसदेव बने रहे हैं। जिसेभारतीय शास्त्रकारों ने 'वार्ता' के अन्तर्गतसम्बोधित किया है।

मौर्यकालीन अर्थ–व्यवस्था में कृषि को प्रमुखता दी गयी। इसकाविवरण अर्थशास्त्र एवं मेगस्थनीज के विवरणों में प्राप्त है। कृषि के विस्तारके अन्तर्गत जनश्रम की अधिक आवश्यकता के कारण अन्य वर्गों केसाथ–साथ शूद्रों को भी कृषि का अधिकार प्रदान करना इस युग में एकनवीन परम्पर का प्रारम्भ था। फलस्वरूप कालान्तर में गुप्त युग में

 Copyright @ 2024 Author

शूद्रों केआर्थिक अधिकारों में वृद्धि हुई, जिसका विवरण तत्कालीन स्मृतियों मेंमिलता है। अन्य कृषकों के साथ शूद्रों को भी पतनोन्मुख एवं जनविहीनग्रामों में बसने के लिए प्रोत्साहित किया गया। विद्वान् ब्राह्मणों कोअधिकांशतः ऊसर भूमि दान में दी गयी, जिसका एक उद्देश्य परती भूमिको कृषि योग्य बनाया जाना था। अर्थशास्त्र में तीन प्रकार की फसलों केविवरण प्राप्त हैं।

कृषि की उपज सिंचाई पर निर्भर होती है। मौर्य युग में सिंचाई कीउत्तम व्यवस्था थी। अर्थशास्त्र में सिंचाई के चार साधनों का उल्लेख है।कालान्तर में गुप्तकाल में रहट के आविष्कार ने कृषि सिंचाई में अभूतपूर्वयोगदान दिया। रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख से ज्ञात होता है किचन्द्रगुप्त मौर्य के सौराष्ट्र प्रान्त के प्रान्तपति पुष्यगुप्त वैश्य ने सिंचाई केनिमित्त गिरनार की सुदर्शन झील के जल के उपयोग के उद्देश्य से एकसुदृढ़ बाँध का निर्माण करवाया। इसी प्रान्त के गवर्नर यवनराज तुषास्फ नेइस बाँध से सिंचाई के लिए नहरें निकलवाकर इसे और अधिक उपयोगीबनाया।

मौर्यकाल में पशुपालन पर राज्य द्वारा पर्याप्त ध्यान दिया गया।कौटिल्य का कथन है कि कृषि सम्बन्धी कार्य–व्यवसाय पशुपालन परनिर्भर होता है। राज्य द्वारा पशुओं की सुरक्षा, चिकित्सा और कल्याण परविशेष ध्यान दिया गया तथा पशुओं की चोरी पर अर्थदण्ड का प्रावधानकिया गया था। स्तम्भलेख–5 से ज्ञात होता है कि अशोक ने धार्मिकभावना के आधार पर कुछ विशिष्ट शुभ दिनों में विशेष पशु–पक्षियों एवंजलचरों आदि के वध का निषेध किया था।

गुप्तकालीन अभिलेख, साहित्य एवं ताम्रपत्रों से ज्ञात होता है कितत्कालीन आर्थिक जीवन कृषि प्रधान था। इस काल में कृषि मौर्यकाल कीअपेक्षा अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई थी। राज्य जनता को भूमिछिद्र–धर्मऔर नीवि–धर्म के अनुसार भूमि वितरित कर रहा था तथा अग्रहार के रूप में ब्राह्मणों को भूमि प्रदान की जा रही थी। गुप्तकाल में ही भूमिदान कीपरम्परा का व्यापक प्रचलन हुआ था जो मौर्यकाल की तुलना में अत्यधिकथा जिससे सामन्तीय प्रथा का उद्भव हुआ। गुप्तकालीन अभिलेखों सेकूपों, वापियों (लघु–तालाबों), तडागों, कुल्या, झील तथा नहरों द्वारासिंचाई किए जाने का विवरण प्राप्त होता है। इस युग में घंटीयंत्र केप्रयोग से कृषि सिंचाई के विस्तार में सहायता मिली।

गुप्तकाल में पशुपालन राज्य और प्रजा की आय का मुख्य साधनथा तथा कृषि के साथ–साथ अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख स्तम्भ था। मनुऔर कामन्दक ने पशुपालन को मुख्यतः वैश्यों का व्यवसाय बताया है।बहुत से उद्योग एवं व्यवसाय वन्य पशुओं पर निर्भर थे और ज्यादातरपालतू पशुओं पर। इन सबका विस्तृत विवरण अमरकोश तथा कालिदासकी रचनाओं में प्राप्त है। चन्द्रगुप्त द्वितीय के साँची अभिलेख, बुद्धगुप्त केएरण अभिलेख एवं समकालीन साहित्यों में गोवध को ब्रह्महत्या आदि पाँचमहापातकों में सम्मिलित किया गया है, जिससे गाय की महत्ता इस कालमें प्रकट होती है। पशुओं के प्रति दयालुता में वृद्धि का एक कारण वैष्णव,बौद्ध एवं जैन धर्मों द्वारा प्रतिपादित अहिंसा सिद्धान्त भी था जिसकाप्रारम्भिक स्वरूप अशोक के काल में दिखायी पड़ता है।

मौर्यकाल में शिल्प एवं उद्योग–धन्धे अत्यधिक विकसित अवस्था मेंथे। इन समस्त शिल्प एवं उद्योग–धन्धों पर राजकीय नियंत्रण विद्यमानथा। वस्त्र उद्योग इस काल का प्रमुख उद्योग था। रेशमी, सूती, ऊनी,दुकूल, क्षौम आदि वस्त्रों का निर्माण होता था। सामाजिक प्रभाव केअन्तर्गत मौर्यकाल में अनेक जातियों का प्रादुर्भाव एवं विकास हो चुका थाजिनका आधार कोई शिल्प या पेशा या वृत्ति था। परम्परागत स्वधर्म यापेशे के आधार पर तन्तुवाय, रजक, तुन्नवाय, सुवर्णकार, चर्मकार, लौहकार,कुट्टाक आदि जातियों का उद्भव होता है।

गुप्तकाल में विभिन्न शिल्पों एवं उद्योगों में अभूतपूर्व उन्नति हुई।मौर्यकाल में जहाँ शिल्प एवं उद्योग पर राज्य का पूर्ण नियंत्रण था, वहींगुप्तकाल में प्रत्येक शिल्प की श्रेणी को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी। समाजअपने विभिन्न शिल्पों, उद्योगों एवं व्यवसायों के उत्कर्ष से अत्यधिक लाभअर्जित कर रहा था तथा राष्ट्र निर्माण में लगा था। सूती, ऊनी, रेशमीसभी प्रकार के वस्त्रों का निर्माण हो रहा था। बुनकरों ने अपने अद्भुतकौशल एवं परिश्रम से तन्तुवाय व्यवसाय को समृद्ध किया था। कालिदासकृत रघुवंश से ज्ञात होता है कि तन्तुवाय वस्त्र निर्माण में इतने कुशल थेकि वस्त्र फूंक मात्र से उड़ जाते थे।

मौर्यकाल में काष्ठ–शिल्प तथा धातु उद्योग अपनी उन्नत अवस्था मेंथा। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भूमिगत तथा समुद्री दोनों ही प्रकार कीखानों का विवरण प्राप्त होता है। सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, टिन, पीतल,कांसा आदि धातुओं से विभिन्न प्रकार के अस्त्र–शस्त्र, बर्तन, आभूषण एवंकृषि तथा दैनिक जीवन में प्रयोग होने वाले उपकरणों का निर्माण कियाजाता था। गुप्तकाल में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास का निर्माणकिया जाता था। गुप्तकाल में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास से समस्तआर्थिक क्षेत्रों में उन्नति हुई जिसका प्रमाण मेहरौली का लौह स्तम्भ

 Copyright @ 2024 Author

है।यह स्तम्भ तत्कालीन तकनीकी को प्रमाणित करता है, क्योंकि आज तकयह स्तम्भ जंग से अछूता है, यह स्पष्ट होता है कि गुप्तकाल में लोहे कीढलाई के छोटे कारखानों के अतिरिक्त राज्य द्वारा नियंत्रित विशालकारखाने भी विद्यमान रहे होंगे जहाँ ऐसे स्तम्भों का निर्माण होता था।गुप्तकाल में वास्तुकार अपने शिल्प से सुन्दर और आकर्षक वास्तुकला कानिर्माण करता था। अजन्ता, एलोरा, बाघ आदि की गुफाओं की कला उसयुग के शिल्पियों की महान देन थी।

मौर्यकाल में आंतरिक तथा विदेशी दोनों ही व्यापार प्रगति पर थे।व्यापार स्थल एवं जल दोनों ही मार्गों से होता था। एक मार्ग ताम्रलिप्तिनामक बन्दरगाह से पश्चिमोत्तर भारत में पुष्पकलावती तक जाता था जो'उत्तरापथ' कहलाता था। गुप्तकाल में आंतरिक व्यापार के लिए ग्राम औरनगर दोनों ही उत्तरदायी थे आंतरिक व्यापार श्रेष्ठि, सार्थवाह, कुलिक,निगम के माध्यम से संगठित और सुव्यवस्थित रूप से होता था। वैदेशिकव्यापार मिश्र, यूनान, रोम, पर्शिया, अरब, सीरिया, श्रीलंका तथा दक्षिण एवंदक्षिण–पूर्व एशिया के विभिन्न देशों से होता था, जिससे इन देशों केसांस्कृतिक विचारों को भी गुप्तकालीन समाज में देखा जा सकता है।

मौर्यकाल में शिक्षा का जनसाधारण में प्रचार था। इस काल मेंतक्षशिला शिक्षा का विश्वविख्यात केन्द्र था। कौटिल्य तक्षशिला में अध्यापनकार्य करता था। चन्द्रगुप्त मौर्य ने यहीं अध्ययन किया था। काशी वैदिककाल से ही शिक्षा के केन्द्र के रूप में विख्यात रही है। जातकों में वर्णितहै कि यहाँ के विद्यालयों में प्रवेश पाने के लिए विद्यार्थी की आयु 16 वर्षहोनी चाहिए। अशोक द्वारा यहाँ अनेक बौद्ध विहारों एवं मठों का निर्माणकरवाया गया था। यह ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन तीनों धर्मों से सम्बन्धितशिक्षण स्थल के रूप में विख्यात था। श्रावस्ती बौद्ध शिक्षा केन्द्र के रूप मेंविख्यात था। अशोक के शासनकाल में यहाँ छात्रों एवं आचार्यों के निवासहेतु आवास स्थापित थे जिनमें निवास करते हुए वे अध्ययन–अध्यापन काकार्य करते थे। इनके अतिरिक्त उज्जयिनी भी शिक्षण केन्द्र के रूप मेंप्रसिद्ध था।

साहित्य में अर्थशास्त्र तत्कालीन इतिहास का प्रमुख स्रोत है। 15अधिकरणों में विभक्त यह ग्रन्थ मौर्य युग के सामाजिक एवं आर्थिक जीवनके विषय में महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ प्रदान करता है। मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्यएवं बिन्दुसार के मंत्री सुबन्धु का उल्लेख बृहत्कथा औरआर्यमंजुश्रीमूलकल्प में मिलता है।

प्रमुख बौद्ध ग्रन्थ कथावस्तु का सर्जन तृतीय बौद्ध संगीति में हुआथा। महाभाष्य की रचना मौर्यकाल के अन्तिम चरण में हुई। पाणिनीव्याकरण पर कात्यायन का भाष्य भी इसी काल की रचना मानी जाती है।मौर्यकाल में दो प्रकार की कला शैलियाँ, दृष्टिगत होती है– राजकीयकला, जिसमें स्थापत्य एवं शिल्पकला आती है और लोक कला। राजकीयकला के अन्तर्गत नगर योजना, राज प्रासाद, शैल गुहाएँ, शिल्पकलाजिससे प्रस्तर स्तम्भ, एकाश्म वेदिका, पशु आकृतियाँ, स्तूप आदि प्रमुख हैं।लोक कला मूर्तियों में दृष्टिगत होती है जिसमें मथुरा से प्राप्त यक्ष मूर्तिऔर परखम से प्राप्त यक्ष मूर्ति प्रमुख है।

मौर्यकाल में जहाँ शिक्षा व्यवस्था के आरम्भिक विकास के दर्शन होते हैं, वहीं गुप्तकाल में भारतीय शिक्षा प्रणाली में परिपक्वता आ गयी थी।इस युग के धर्म ग्रन्थों, साहित्यिक स्रोतों आदि से इस युग की शिक्षा केस्वरूप पर प्रकाश पड़ता है। विष्णुपुराण में कहा गया है कि विद्या सेमुक्ति की प्राप्ति होती है तथा मानव शिल्प में निपुणता अर्जित करता है।इसी प्रकार मुण्डकोपनिषद में ज्ञान को मनुष्य का तीसरा नेत्र बताया गयाहै, जिससे मनुष्य समस्त तत्वों के मूल अर्थ को समझने में सक्षम होता हैऔर इससे वह उचित कर्मों की ओर प्रवृत्त होता है। वायुपुराण के अनुसारविद्या से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इतना ही नहीं ज्ञान से मनुष्य कोअमरत्व एवं स्वर्ग की प्राप्ति भी होती है। हितोपदेश में जीवन के समस्तभौतिक सुखों की प्राप्ति विद्या द्वारा बतायी गयी है। शिक्षा की सार्थकतासिद्ध करते हुए नीतिशतक में विद्याहीन मनुष्य को पशुतुल्य कहा गया है।

गुप्तकाल में शिक्षा के केन्द्र प्रायः गुरुकुल, विद्यापीठ, मठ एवंविश्वविद्यालय थे। कालिदास के ग्रन्थों से पता चलता है कि राजाओं केप्रासादों में विशेष रूप से राजपरिषद की स्त्रियों तथा कुमारियों आदि केशिक्षण की व्यवस्था थी। पाटलिपुत्र, मथुरा, उज्जयिनी, वाराणसी औरनासिक गुप्तकालीन शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे। गुप्तकाल में ही नालन्दामहाविहार का उत्कर्ष एक विश्वविद्यालय के रूप में हुआ था। ह्वेनसांग केअनुसार यहाँ रहकर पढ़ने वालों की संख्या दस हजार थी।

गुप्तकाल में भी शिक्षण केन्द्र के रूप में काशी का महत्त्व यथावत्बना रहा। भारत की सात मोक्षदायिनी नगरियों में से एक मानी जाने वालीकाँची नगरी गुप्तकाल में भारतीय शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र थी। यहाँदेश के विभिन्न भागों से छात्र अध्ययन हेतु आते थे।

 Copyright @ 2024 Author

साहित्य की दृष्टि से गुप्तकाल वास्तव में स्वर्णकाल था।गुप्तकालीन साहित्य में प्रशस्तियाँ, काव्यग्रन्थ और नाटक, नीतिग्रन्थ, स्मृतिग्रन्थ कोश और व्याकरण, दर्शनशास्त्र और विज्ञान प्रमुख है। कला के क्षेत्रमें गुप्तकाल और उत्कृष्टता की चरम सीमा पर पहुँच गया था। कला केअन्तर्गत स्थापत्य कला, शिल्पकला एवं चित्रकला प्रमुख रूप से आते हैं।गुहा मन्दिर के अन्तर्गत अजन्ता एवं एलोरा के मन्दिर मुख्य हैं। अनेकोंमन्दिर जैसे– एरण का वैष्णव मन्दिर, भूमरा का शिव मन्दिर, नचना कापार्वती मन्दिर, देवगढ़ का दशावतार मन्दिर, भीतर गाँव कानपुर का मन्दिर,तिगवा का मन्दिर, साँची का मन्दिर, मुकुन्द दर्रा मन्दिर, शंकरगढ़ कामन्दिर, ऐहोल का मन्दिर, कहौम (कहांव) का मन्दिर, महाबोधि मन्दिर तथास्तूप और विहार, राजप्रासाद, स्तम्भ गुप्तकालीन कला के चर्मोत्कर्ष कोदिखाते हैं।

मौर्यकाल में लोग शाकाहारी और मांसाहारी दोनों प्रकार के थे।भोजन में गेहूँ, जौ, चावल, दूध, दही, घी आदि का प्रयोग होता था।मेगस्थनीज ने भारतीयों के भोजन करने के ढंग पर विवरण दिया है।उसके अनुसार सामूहिक भोजन के लिए उनके यहाँ कोई समय निश्चितनहीं होता था। मौर्यकाल में लोग आभूषण आदि में रुचि रखते थे। वे सूतके निर्मित, कढ़े हुए कपड़े पहनते थे। वस्त्रों पर सोने व बहुमूल्य पत्थरोंका काम होता था। नियार्कस ने कामदार जूते का उल्लेख किया है। धनीलोग कानों में हाथी दाँत की बालियाँ पहना करते थे। आमोद–प्रमोद केलिए सामाजिक उत्सव तथा अन्य साधन थे।

मौर्यकाल की तरह गुप्तकाल में भी शाकाहार और मांसाहार दोनोंभोजन का प्रचलन था। लोग मछली–भक्षण भी करते थे। लोग मद्यपान भीकरते थे। कालिदास के नाटकों में मद्य, मदिरा, आसव आदि अनेंक नामोंका उल्लेख हुआ है। स्त्री–पुरुष विभिन्न प्रकार के ऋतुसुलभ तथाअवसरोचित वस्त्र पहनते थे। रेशमी और ऊनी वस्त्रों का प्रयोग होता था।पुरुष बहुधा तीन वस्त्र– पगड़ी, उत्तरीय और अधोवस्त्र पहनते थे। स्त्रियाँभी प्रायः चोली, घाघरा और उत्तरीय पहनती थीं। स्त्री और पुरुष दोनोंआभूषणों का प्रयोग करते थे। गुप्तकाल में द्यूतक्रीड़ा और चौपड़ का खेलनागरिकों के मनोरंजन के प्रमुख साधन थे। जलक्रीड़ा और नौका विहारभी प्रचलित था। फाहियान के अनुसार पाटलिपुत्र में रथयात्रा का उत्सवप्रतिवर्ष मनाया जाता था।

सन्दर्भ सूची –

- बोनार्ड, लिविंग सी. मौर्यन इण्डिया, दिल्ली, 1985
- ओमप्रकाश प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, तृतीय संस्करण, दिल्ली, 1986
- चट्टोपाध्याय, बी.डी. एसेज इन एंशिएंट इण्डियन इकोनॉमिक हिस्ट्री, 1987
- मुखर्जी, राधाकुमुद प्राचीन भारत, नई दिल्ली, 1980, अशोक, दिल्ली, 1985, चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल, नई दिल्ली, 1990
- पाण्डेय, विमलचन्द्र भारतवर्ष का सामाजिक इतिहास, इलाहाबाद, 1995
- मिश्रा, ममता गुप्तयुगीन समाज व्यवस्था, लखनऊ, 2000
- जायसवाल, एस.के. प्राचीन भारतीय समाज, लखनऊ, 2002
- पाठक, विशुद्धानन्द प्राचीन भारतीय आर्थिक इतिहास, उत्तर प्रदेश, हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2004
- उपाध्याय, वासुदेव प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मन्दिर, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 2008
- आर्कियोलॉजिकल सोसायटी आफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट
- एपिग्राफिया इण्डिका, क्वार्टली
- इण्डियन हिस्टॉरिकल, गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया, कलकत्ता
- इण्डियन हिस्टॉरिकल, क्वार्टली, जयपुर

 Copyright @ 2024 Author